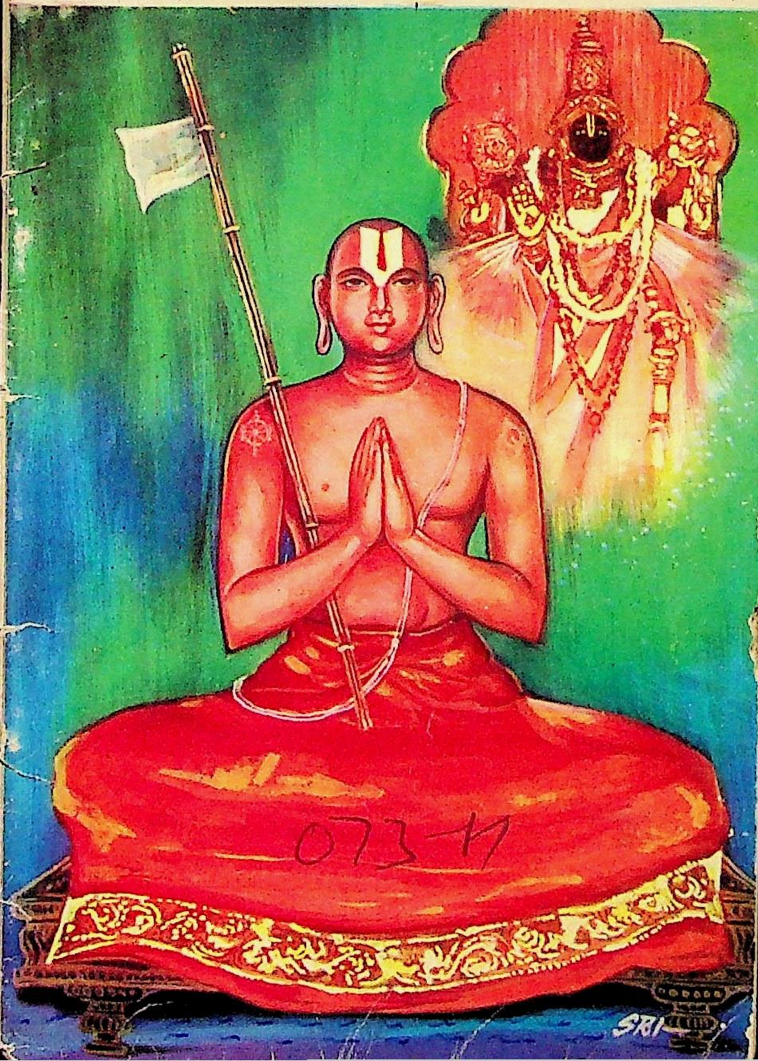
रामानुजाचार्य

'रघुसुत'



पुष्प १३

रामानुजाचार्य

लेखक
रघुसुत

अनुवादिका
सौ. वीणा शिरपुरकर

मुख्य सम्पादक
एस. आर. रामस्वामी

भारत-भारती [हिन्दी संस्करण]
रुईकर पथ, नागपुर-२

प्रकाशक
भारत-भारती [हिन्दी संस्करण] बाल पुस्तकमाला
प्रभाकर फैजपुरकर
कार्यवाह
श्री बाबासाहब आपटे स्मारक समिति
रुईकर पथ, नागपुर, महाराष्ट्र

सत्यपाल पटाईत
सम्पादक, हिन्दी संस्करण

प्रथम संस्करण सितम्बर १९८४

मूल्य रु. २–५०

मुद्रक
दि. भि. धाक्रस
नाग मुद्रणालय, रुईकर पथ, नागपुर–२

कुछ अपनी बात

हमारे पूर्वजों का स्मरण, सदा प्रेरणा का अखंड स्रोत रहा है। उनकी जीवनियों का अध्ययन हमारे लिए सदा ही शिक्षाप्रद, मार्ग-दर्शक सिद्ध हुआ है। न केवल भारत अपितु इस विश्व की समस्त मानव-जाति के लिए हमारा यह सांस्कृतिक-धन एक आकर्षण का विषय रहा है।

अपने इस गौरवमय इतिहास के निर्माता इन महान पुरुषों की जीवनियों को सरल, सुबोध और सहज ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य राष्ट्रो-त्थान परिषद, बंगलोर ने प्रारंभ किया है। कन्नड तथा अंग्रेजी में छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में इस इतिहास को नयी पीढी तक पहुंचाने का यह कार्य है। मूलतः यह कन्नड में लिखी गयी हैं।

श्री बाबासाहब आपटे स्मारक समिति, नागपुर ने इसी का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का दायित्व उठाया है और 'भारत-भारती'

(हिन्दी संस्करण) के अंतर्गत इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

हमारे ऐतिहासिक महापुरुष, ऋषि-मुनि, सम्राट, वीर, योद्धा, साधु-संत राजनीतिज्ञ, कलाकार सभी का समावेश इसमें है।

नयी पीढी को अपनी इस अमर थाती को सौंपने में, हमारा भी कुछ सहयोग रहा, इसकी हमें प्रसन्नता है। विश्वास है आप भी इसे पसंद करेंगे और हमारा हाथ बटावेंगे।

विनीत

सत्यपाल पटाईत

सम्पादक

रामानुजाचार्य

रामानुजाचार्यजी विशिष्टाद्वैतवाद के मुख्य भाष्यकार थे। साथ ही साथ वे एक महान समाज सुधारक भी थे। उनका कहना था कि मेरे प्रयत्नों से अगर लोगों को मुक्ति मिलती है तो बदले में मुझे नर्कवास की सजा भी मिली तो कोई परवाह नहीं। अपना आध्यात्मिक संदेश उन्होंने समाज के निम्नतर वर्गोंतक पहुंचाया। उन्होंने कर्नाटक के मेलकोटे नगर में 'यतिराज मठ' की स्थापना की।

चेलुवनारायण स्वामी के मंदिर का निर्माण किया। कई पुराने जीर्ण-शीर्ण मंदिरों का पुनरुद्धार किया। विशिष्टाद्वैतवाद के प्रसार के लिए आध्यात्मिक साहित्य का सृजन किया और मानव को एकता का संदेश दिया।

रामानुजाचार्य

विष्णुपूजा का अपना अलग ही महत्त्व है। विष्णु के उपासक 'वैष्णव' कहलाते हैं। वे श्रीरामचंद्र और श्रीकृष्ण के परमभक्त होते हैं। ऐसे उपासकों को 'वैष्णवपंथी' कहते हैं। 'श्री' याने लक्ष्मी। माता लक्ष्मी की उपासना द्वारा श्रीविष्णु को प्रसन्न करनेवालों को श्रीवैष्णव कहते है। वे विशिष्टाद्वैत के सूत्रों का पालन करते है।

इस 'श्रीवैष्णव' धर्म का प्रचार तमिलनाडु के आल्वारों ने किया। इस उपासनामार्ग को जनसमर्थन व्यापक रूप में मिला था। ईसा की छटी सदी से नवीं सदी तक बारह आल्वार विभिन्न वर्गों से आए थे। वे किसी एक जाति-विशेष के न होने पर भी, श्रीवैष्णव आज भी उनकी पूजा करते हैं।

इन आल्वारों के पश्चात आचार्यों की परम्परा चालू होती है। श्रीयमुनाचार्यजी विशिष्टा-

द्वैतमार्ग के प्रथम आचार्य थे। इस परम्परा के दूसरे आचार्य श्रीरामानुज हैं। इन्होंने इस मार्ग को सूत्रवद्ध किया।

शैशव और विवाह

मद्रास के निकट ३० मील पर एक छोटा सा गांव है श्रीपेरंबुदूर। यहां एक अति-प्राचीन मंदिर है। इसी मंदिर में रामानुज के पिता आसूरी केशवाचार्य और माता भूदेवी रहते थे। वे यमुनाचार्यजी के शिष्य थे। रामानुज के नाना (मातामह) श्रीशैलपूर्णजी भी यमुनाचार्यजी के परमशिष्य थे। भूदेवी की छोटी वहन श्रीदेवी कुसुमनयन भट्ट से ब्याही थी। आसूरी केशवाचार्य को केशव पेरुमल भी कहा जाता था।

केशवाचार्य और भूदेवी द्वारा भगवान की आराधना की गई। सन् १०१७ में रामानुज का जन्म हुआ। ठीक उसी समय श्रीदेवी को भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम गोविंद रखा गया।

रामानुज और गोविंद की जोडी अटूट थी। जीवन के अंत तक दोनों ने साथ निभाया।

पिताने योग्य समयपर उसका उपनयनसंस्कार किया।

रामानुज का स्वभाव बहुत कुछ श्रीरामचंद्रजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी से मिलता-जुलता था। इसी कारण 'रामानुज' नाम प्रचलित रहा। वह मेधावी छात्र था। एकपाठी था। इस अद्भुत शक्ति से वह अध्ययन में सब से आगे रहता था। गुरुजनों के अपार स्नेह से उसने चारों वेद और आठ वेदांगों का अध्ययन किया था।

सोलह वर्ष की आयु में उसका विवाह रक्षाम्बा से हुआ। उसे तंजम्मा भी कहा जाता था। कुछ दिन बाद पिता केशवाचार्य की अचानक मृत्यु से उनपर तीव्र आघात हुआ। वह उदास रहने लगा। अपनी माता व पत्नी को साथ लेकर कांचीपुरम में आकर बसा। गोविंद भी उनके साथ कांचीपुरम आ गया।

शिष्योत्तम रामानुज

रामानुज का वेदान्त का अध्ययन पूरा न

होने से वह योग्य गुरु की खोज में था। सद्भाग्य से यादवप्रकाश जैसे प्रकांड पंडित कांचीपुरम् में मिले, वह उन्हीं का शिष्य हो गया।

वेदाभ्यास फिरसे शुरु हुआ परंतु रामानुज संतुष्ट नहीं था। गुरु के दोष देखना यद्यपि अच्छा नहीं, फिर भी यादवप्रकाश की शिक्षा में उसे कमी नजर आने लगे।

उसे लगा कि वेदसूत्रों का अर्थ ठीक से नहीं हो रहा है। वह दुविधा में पड गया।

एक दिन का प्रसंग है– छांदोग्य उपनिषद् के एक सूत्र का अर्थ गुरुजी ने किया। रामानुज को वह ठीक न लगा। उसने गुरु से कहा– "क्षमा कीजिए आचार्य; मुझे इस से कुछ अलग ही बोध होता है।" और उसने उस सूत्र का सही अर्थ बता दिया। गुरुजी को शिष्य की प्रतिभा का परिचय तो हुआ लेकिन मन में भय भी पैदा हुआ कि यह शिष्य अपने से आगे निकल जाएगा। दूसरे दिन भी वही बात। तैत्तिरीय

उपनिषद् के सूत्र पर फिर विवाद हो गया। गुरुजी ने दिए अर्थ से रामानुज सहमत नहीं था। उसका उसने सही अर्थ वताया। अव पं. यादव प्रकाशजी को यह वात खटकी। वे रुष्ट हुए। कहा–"देखो, तुम्हें मेरे पास सन्तोष नहीं है तो बेहतर होगा कि तुम यह गुरुकुल त्याग दो।"

इस घटना के वाद अन्य छात्र भी रामानुज से ईर्ष्या करने लगे। उसे आश्रम से निकालने की सोचने लगे।

उसकी रक्षा करनेवाला कौन था ?

उन्हीं दिनों गुरुजी ने छात्रों सहित 'काशी यात्रा का आयोजन किया। रामानुज और गोविंद सहित सभी छात्र मार्गक्रमण करते हुए विंध्याचल पहुंचे। विंध्यपर्वतीय मार्ग भयानक जंगल से था। उसे पार करने के पहले एक रात सभी ने वहीं आराम किया। तभी गोविंद के कानों पर यह वार्ता पहुंची कि रामानुज के प्राण खतरे में हैं। वह तुरन्त उसके पास आया और उसने उसे सचेत किया।

बात सुनकर रामानुज को बहुत दुःख हुआ। उसी समय वह रात्रि के अन्धकार में जंगल में भाग गया।

दूसरे दिन गुरुजी और उनके अन्य शिष्यों ने बहुत खोज की, लेकिन पता न चलने से वे सभी सोचने लगे कि जंगली जानवर उसे खा गया होगा। अन्ततः वे सभी आगे की यात्रा पर निकले।

रामानुज जंगल में भटकता रहा। फिर उस भयानक डरावने घोर जंगल में ईश्वर से प्रार्थना कर एक वृक्ष के नीचे सो गया।

आंखें खुलते ही जंगल से बाहर निकलने का मार्ग खोजने लगा। किन्तु मार्ग मिलना कठिन था। तभी उसे एक वनवासी शिकारी पति-पत्नी आते दिखाई दिये। पास आकर उन्होंने रामानुज से पूछा-"भाई, कौन हो तुम? इस जंगल में कहां भटक रहे हो?" रामानुज ने सारी घटना सुनाई, उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वह दम्पत्ति दक्षिण की ओर जा रहे थे, रामानुज भी उनके साथ हो गया।



रामानुज वनवासी शिकारी दम्पत्ति के साथ

जंगल से बाहर आते–आते दिन ढल गया, शाम घिर आयी। उन्होंने रात्रि को वहीं ठहरने का निश्चय किया। थोडी जगह साफ कर अपना डेरा जमाया। आधी रात बीतने पर शिकारी की पत्नी को प्यास लगी। रामानुज पानी लेने गया। दूर के पोखर से पानी लाकर दिया किन्तु उसकी प्यास न बुझी। फिर से रामानुज पानी लाने चल पडा। पोखर तक पहुंचते उसे अरुणोदय हो गया। रामानुज ने चारों ओर नजर दौडाई। वे विस्मित हो गये। क्योंकि वही जाना–पहचाना क्षेत्र उनकी आंखों के सामने था। 'अरे! यह तो कांचीपुरम ही है! लेकिन यह कैसे सम्भव है? एक रात्रि में इतना लम्बा अन्तर कैसे तय हुआ? हो न हो वे शिकारी पति–पत्नी स्वयं श्रीविष्णु और श्रीलक्ष्मीजी हैं, जिन्होंने मेरा संकट दूर किया।' इस विचार से उनकी आंखों से आंसू वह निकले। वह दौडते हुए उसी स्थान पर आया किन्तु भगवान भक्त का संकट दूर कर अन्तर्धान हो गये थे। रामानुज का हृदय भक्ति से भर गया। पोखर से लाए

पानी का कमंडलु हाथ में ही था। उसी जल से उसने भगवान वरदराज का अभिषेक किया। और आजीवन पोखर से पानी लाकर भगवान की पूजा का नियम-व्रत निभाया।

अपनी काशीयात्रा से यादव प्रकाशजी शिष्य समेत लौट आनेपर उन्होंने देखा कि रामानुज सकुशल कांचीपुरम आ गया है। उन्हें आश्चर्य हुआ और दुःख भी। रामानुज का हृदय निर्मल था। वह शुद्ध भाव से गुरुजी से मिला और भगवान नारायण की कृपा-घटना उन्हें सुनाई। गुरुजी के आग्रह पर रामानुज फिर से अध्ययन करने गुरुकुल लौट आए।

भविष्य का दीप

यमुनाचार्यजी ने अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धांत को लेकर संस्कृत में विपुल ग्रंथ-रचना की। लेकिन वैष्णव पंथ का कार्य अभी वहुत कुछ शेष था। यमुनाचार्यजी को अपने योग्य उत्तराधिकारी का चयन करना था।

श्रीरंगम् में रहकर उन्होंने रामानुज के विषय में बहुत कुछ सुना था। उससे उन्हें रामानुज के लिये जिज्ञासा हो गयी और तीर्थ-यात्रा करते कांचीपुरम् पहुंचते ही उसे देखकर वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान वरदराज स्वामी से प्रार्थना की–" हे भगवन, निश्चय ही यही वह पुरुष है जिसकी मुझे तलाश थी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा अधूरा कार्य यह अवश्य संपन्न करेगा। मैं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा। और वह दिन दूर न था।

निकल जाओ !

यादवप्रकाश ने यद्यपि रामानुज को अपने शिष्य-परिवार में रहने की अनुमति दी तथापि उनका मन साफ नहीं था। एक दिन पुनः वही पुरानी कहानी दोहराई गई। गुरुजी 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म' (ईश्वर सर्वत्र है) की व्याख्या कर रहे थे। और रामानुज ने फिर से अपनी अलग व्याख्या कर तेजस्वी प्रतिभा का परिचय दिया। यादवप्रकाश क्रोधित हुए। उन्होंने

रामानुज को सिखाना बंद कर गुरुकुल से निकाल दिया। रामानुज बहुत उदास हो गया। और अपना समय भगवन वरदराज की सेवा में व्यतीत करने लगा।

मैं आपका कार्य पूर्ण करूंगा।

यादवप्रकाशजी से रामानुज अलग हुए हैं यह पता चलते ही यमुनाचार्यजी ने अपने शिष्य महापूर्ण को कांचीपुरम् से रामानुज को लाने के लिए भेज दिया। महापूर्ण दिन–रात प्रवास कर क़ांची पहुंचे। रामानुज से भेंट हुई। वे उनसे प्रभावित हुए। रामानुज के लिए अपने गुरुजी का सन्देश उन्होंने सुनाया। यमुनाचार्यजी जैसे महान पुरुष के पास रहने की रामानुज की अभिलाषा थी ही। वह तुरन्त महापूर्ण के साथ श्रीरंगम् के लिए चल पडा। लेकिन दुर्भाग्यवश रामानुज के आने के पहले ही उनकी मृत्यु हो चुकी थी। श्रीरंगम् पहुंचने पर कावेरी के तटपर लोगों की भीड देखी। उन्हें पता चला कि यमुनाचार्यजी के अंत्य–संस्कार के लिए लोग

वहां आए हैं। रामानुज यह सुनकर स्तब्ध रह गया। अश्रुपूरित नेत्रों से उसने उस महान विभूति के पार्थिव शरीर का दर्शन किया। रामानुज अपनी मूक श्रद्धांजलि अर्पित कर ही रहा था कि एक चमत्कार हुआ। यमुनाचार्यजी के दाहिने हाथ की तीन अंगुलियां मुडी हुई थीं। वह समझ गया। उन्होंने सुना ही था कि यमुनाचार्यजी की तीन प्रवल इच्छाएं अभी पूर्ण नहीं हुई थीं। उन्हें वेद व्यासजी के 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य करने की इच्छा थी।

व्यास और आल्वारों की महिमा का वखान करना और श्रीवैष्णव सिद्धांत का प्रचार करना ये उनकी और दो अपूर्ण इच्छाएं थीं। रामानुज उस महापुरुष के पार्थिव शरीर के सम्मुख खडा हो गया। आचार्य को श्रद्धांजलि अर्पित की और यमुनाचार्यजी का अधूरा कार्य पूर्ण करने की शपथ ली। तभी वे अंगुलियां एक-एक कर सीधी हो गयी।

रामानुज सच्चे वैष्णव थ। उनका मत था कि किसी ऊंचे जाति के वजाय मनुष्य

अपने गुणों से श्रेष्ठ बनता है। महात्मा कांचीपूर्णजी ऐसे ही एक श्रेष्ठ सन्त थे। रामानुज ने कांचीपूर्णजी को अपना गुरु स्वीकार किया। वे पूर्ण शिष्यभाव से अपने गुरुजी को साष्टांग प्रणिपात करते थे। रामानुज ब्राह्मण थे इसलिए गुरुजी ने उन्हें ऐसा करने से रोका। लेकिन वे नहीं माने।

रामानुज की पत्नी सर्वथा विपरीत स्वभाव की थी। वह कर्मठ थी। एक दिन रामानुज ने अपने गुरुजी को भोजन का निमन्त्रण दिया। वे गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते थे। कांचीपूर्णजी ने आमन्त्रण स्वीकार किया। भोजन की तैयारी हो जाने पर वे उन्हें लाने घर से चल पडे। इधर गुरुजी दूसरे मार्ग से रामानुज के घर पहुंच गये। वे जानते थे कि रामानुज की पत्नी अत्यंत कर्मठ है। रामानुज अभी बाहर ही थे कि गुरुजी भोजन करके चल दिये। रामानुज की पत्नी ने बचा हुआ सारा अन्न भिखारियों को बांट दिया। उसने घर को साफ किया। स्वयं स्नान कर घर के लोगों के लिए

दूसरा खाना पकाया। रामानुज के वापिस आने पर उन्हें यह सब पता चला तो वे बहुत व्यथित हुए। उन्होंने अपनी पत्नी को बहुत उपदेश दिया लेकिन उसपर कोई असर न हुआ।

ऐसी, ही एक दूसरी घटना है। द्वारपर आए कुछ क्षुधित अतिथि को घर में कुछ नहीं है कहकर पत्नी ने बिना भोजन दिये ही लौटा दिये। रामानुज को पता चला कि पत्नी ने झूट बोला है। वे क्रोधित हुए और उन्होंने पत्नी की तीव्र आलोचना की। मानव-कल्याण की चिन्ता करनेवाले उस महामानव की भावनाओं को समझने की उस स्त्रीने कभी कोशिश ही नहीं की।

यतिराज रामानुज

रामानुज की साधना चल रही थी। जब कभी उन्हें कुछ सिद्धान्त में समझने कठिनाई होती तो वे अपने गुरु कांचीपूर्ण के पास पहुंच जाते। अपने मेधावी शिष्य का समाधान करना जब उन्हें असंभव-सा लगता तो वे भगवान वरदराज के सम्मुख ध्यान करने बैठ जाते और जो भी

साक्षात्कार करते उसे वह रामानुज को बता देते। कहते हैं कि इन्हीं साक्षात्कारों के माध्यम से विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के मूलमन्त्र प्राप्त हुए हैं।

रामानुज अब महापूर्णजी के शिष्य बनने के लिए कांचीपुरम् से श्रीरंगम् की ओर चल पडे। उसी समय यमुनाचार्यजी का अधूरा कार्य रामानुज आगे बढाए इसी इच्छा से महापूर्णजी भी रामानुज से मिलने कांची रवाना हुए। अपना अपना संकल्प लिए निकले ये महान यात्री जब रास्ते में मिलें तो भाव-विभोर हो गये। रामानुज ने कहा, "गुरुदेव, मुझे अपना शिष्य स्वीकार कीजिए।" और वहीं पास के एक बकुल वृक्ष के नीचे महापूर्णजी ने इस महान शिष्य को विधिवत् स्वीकार किया। उन्हें विशिष्टाद्वैत सिद्धांत समझाया। तदुपरान्त रामानुज अपने गुरुजी को लेकर कांची लौट आए और उन्हें अपने ही पास रख लिया। छः महीनों तक गुरुसेवा की। "नालायिरा प्रबन्ध" का अध्ययन किया और उसमें दिये गए विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त को पूर्णरूप से समझ लिया।

रामानुज का अध्ययन सुचारू रूप से चल रहा था कि एक घटना घटी जिससे उनका सारा जीवन ही बदल गया।

गुरु महापूर्णजी भी ब्राह्मण न थे। एक दिन उनकी पत्नी कुंए पर पानी भरने गयी। और गलती से पानी के कुछ छींटे रामानुज की पत्नी की गागर पर पडे। फिर क्या था ? वह लड पडी। महापूर्णजी बहुत दुखी हुए। उन्हें लगा कि वहां अधिक रहना उचित नहीं। और उसी समय वे श्रीरंगम् के लिए चल दिए।

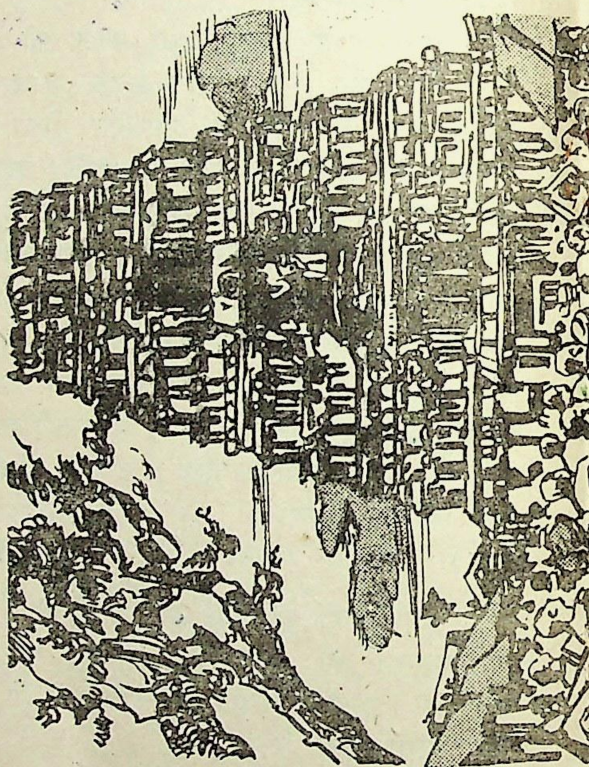
रामानुज पर जैसे वज्रपात हो गया। वे समझ गए कि ऐसी स्त्री के साथ रहकर अपने जीवन का लक्ष्य पूर्ण नहीं होगा। तब उन्होंने वह कठोर निश्चय किया; संन्यासदीक्षा लेने का। उन्होंने पत्नी को मायके भेज दिया और भगवान वरदराज के साक्षी में संन्यास ग्रहण किया। रामानुज "यतिराज" बन गए। सब ऐहिक बन्धनों से सदा के लिए मुक्त हो गए।

श्रीरंगम् में वापसी

रामानुज के संन्यास-ग्रहण करने की वार्ता चारों ओर फैल गयी। लोग उनके दर्शन करने लगे। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कुछ उनके शिष्य बने। रामानुज के भतीजे दाशरथी और कूरेश भी उनमें थे। रामानुज का यह नया रूप देखकर उनके पुराने गुरु यादव प्रकाशजी बहुत लज्जित हुए। वे भी रामानुज से आकर मिले। रामानुज को भी यादव प्रकाशजी से मिलकर आनंद हुआ। यादव प्रकाशजी के अनेक शंकाओं को कूरेश ने दूर किया। यादव प्रकाशजी का मन पूर्ण रूप से परिवर्तित हुआ। उन्होंने श्रीवैष्णव धर्म स्वीकार किया। तब से वे गोविंदजीयर नाम से विख्यात हुए।

अब शिष्यों की कोई कमी नहीं थी। फिर भी रामानुज को अपने भाई गोविन्द की याद आती थी। उन्होंने गोविन्द को कालहस्ती से अपने पास कांची बुला लिया।

यमुनाचार्यजी का निर्वाण होने पर श्रीरंगम् के उनके अनाथ शिष्योंने रामानुज को श्रीरंगम्





मंदिर के गोपूर पर खडे होकर उन्होंने एकत्रित लोगों को मंत्र की दीक्षा दी।

लाने का निश्चय किया। यह कार्य यमुनाचार्यजी के प्रमुख शिष्य वररंगा पर सौंपा गया। रामानुज उनकी बात मान गए। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर रामानुज फिर एक बार श्रीरंगम् आ गए। किन्तु उनके मन में एक विचार सदैव रहता था कि उनका ज्ञान अभी अधूरा है। वे फिर एकबार महापूर्णजी के पास पहुंच गए और साधना में लीन हुए। अन्ततोगत्वा एक दिन महापूर्णजी ने उन्हें बताया, "वत्स, मेरे पास जो भी था मैं तुम्हें दे चुका हूं। अब इस महान सिद्धान्त का अधिक ज्ञान तुम्हें गोष्ठीपुरा के गोष्ठीपूर्ण ही दे सकते हैं।"

लेकिन गोष्ठीपूर्णजी का आशीर्वाद प्राप्त करना सरल नहीं था। पहले वे शिष्य की परीक्षा करते थे। वे कई दिनों तक तो रामानुज को टालते रहे। लेकिन रामानुज की ज्ञानलालसा देख वे प्रसन्न हुए और एक दिन उनसे कहा, "ठीक है, कल तुम दण्ड और कमण्डलु लेकर मेरे पास आ जाओ।"

दूसरे दिन रामानुज शिष्य दाशरथी और कूरेश सहित गोष्ठीपूर्णजी के आश्रम में आए। शिष्यों सहित रामानुज को आए देख गुरुजी ने पूछा, "मैंने तुम्हें अकेले आने को कहा था। तुम इन्हें साथ क्यों लाये हो?" रामानुज ने अविलम्ब उत्तर दिया, "आचार्य! आपने दण्ड कमण्डलु के साथ आने को कहा था। दाशरथी मेरा दण्ड है और कूरेश कमण्डलु। इनके बिना मैं अधूरा हूं।" उत्तर सुनकर गोष्ठीपूर्णजी गद्गद हो गये। उन्होंने रामानुज को 'अष्टाक्षरी मन्त्र' सिखाया और उसकी महत्ता बताते हुए कहा, "वत्स, यह मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके पाठ से साक्षात् भगवान के स्वरूप का आकलन होता है। अतएव इस मन्त्र की दीक्षा केवल पात्र शिष्य को ही देना।" रामानुज को लगा, ऐसा भेदभाव करने से ज्ञान से कुछ लोग वंचित हो जायेंगे। ऐसा करना मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

दूसरे ही दिन वे एक मन्दिर के गोपूर पर चढ गए और नगर के सभी लोगों को एकत्रित

कर उन्होंने अपनी दिव्य वाणी से अष्टाक्षरी मन्त्र का उच्चारण करते हुए लोगों को भी वैसा करने को कहा। बाद में उस महामन्त्र का अर्थ लोगों को समझाया। सर्व नगरजन परमानन्द का अनुभव करने लगे।

गोष्ठीपूर्णजी को जब इस घटना का पता चला तो वे क्रोधित हो गये। उन्होंने रामानुज से कहा, "तुमने गुरु की आज्ञा का पालन न करने का घोर पाप किया है। तुम जानते हो कि इसका परिणाम क्या है?"

रामानुज शान्तिपूर्वक बोले, "हां गुरुदेव! मुझे नर्कवास मिलेगा। लेकिन ऐसा करने से मेरे हजारों बान्धवों को मुक्ति का मार्ग मिला है जो कि मेरे लिए स्वर्गप्राप्ति से भी अधिक है। आपके बताये परिणाम की मुझे कोई चिन्ता नहीं।" रामानुज के शब्दों से गोष्ठीपूर्णजी को सत्य का साक्षात्कार हुआ। वे समझ गये कि रामानुज का धरती पर अवतार मानवता के उद्धार के लिए ही हुआ है। उन्होंने भावविव्हल हो अपने उस महान शिष्य को गले लगाया।

परिपूर्णता

यमुनाचार्यजी के पांच शिष्य थे। कांचीपूर्ण, महापूर्ण, गोष्ठीपूर्ण, मालाधर और वररंगस्वामी। इन में प्रत्येक श्रीवैष्णव सिद्धान्त की एक एक शाखा का अधिकारी था। रामानुज अब तक तीन आचार्यों के पास रहकर शिक्षा ग्रहण कर चुके थे। अभी दो आचार्यों से वे मिले नहीं थे।

गोष्ठीपूर्णजी से आज्ञा लेकर वे मालाधरजी के पास पहुंचे। मालाधरजी नम्मालवार सूक्तों के आचार्य थे। वे 'तिरुमलैआंडाना' के नाम से भी विख्यात थे। रामानुज नम्मालवार सूक्तों का अभ्यास करने लगे। मालाधरजी ने उन्हें 'तिरुवायमोली' की व्याख्य समझायी। जो ज्ञान उन्हें गुरु यमुनाचार्यजी से प्राप्त हुआ था वही वे अपने इस शिष्य को दे चुके थे।

मालाधरजी की आज्ञा लेकर वे वररंगाचार्यजी के पास आ गए। वररंगस्वामी इस शिष्य को नालायिरा सूक्तों का अर्थ समझाने लगे। शीघ्र ही वे नालायिरा सूक्तों में पारंगत

हो गये। यमुनाचार्यजी से प्रतिपादित श्रीवैष्णवधर्म के बिखरे हुए सिद्धान्त अपने पांचों गुरुओं से प्राप्त कर रामानुज ने उन्हें एकत्रित और सूत्र-बद्ध किया। वे स्वयं भी परिपूर्णता को प्राप्त हुए।

अब वे परिपूर्ण धर्मगुरु की अवस्था प्राप्त कर चुके थे। वे अधिकारवाणी से अपने लोगों में श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार करने लगे। उन्होंने तीन महान ग्रंथों की रचना की– गद्यत्रय, नित्य-ग्रंथ और गीताभाष्य। तपःसाधना से प्राप्त आत्मज्ञान और ईश्वरीय अनुभव को वे देशबान्धवों में वितरित करने लगे।

विरोध

अध्ययन पूर्ण कर रामानुज श्रीरंगम् लौट आए और श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार और प्रसार करने लगे। उन्होंने लोगों को मठाधीशों के चंगुल से मुक्ति दिलाई। फलस्वरूप उच्चवर्णीय मठाधीशों का महत्व कम होने से वे निराश हो

गये। रामानुज को रास्ते से हटाने की योजनाएं बनाने लगे।

रामानुज संन्यस्त वृत्ति से रहते थे। वे प्रतिदिन कुछ घरों से भिक्षा मांग कर अपना निर्वाह करते थे। एक दिन वे एक गृहस्थ के द्वार पर खडे होकर भिक्षा मांग रहे थे। गृहस्वामिनी भिक्षा लेकर वाहर आयी। उसकी दृष्टि इस तेजःपुंज यति पर जाते ही वह भय से थरथर कांपने लगी। यह देखकर रामानुज विस्मय से बोलें, "मां, क्या वात है। तुम अस्वस्थ तो नहीं?"

"मुझे क्षमा कीजिए भगवन्, मैं घोर पापिनी हूं। इस भिक्षान्न में मैंने मेरे पतिदेव के कहने पर जहर मिलाया था।" यह सुनकर रामानुज स्तब्ध रह गये। वह अन्न नदी में विर्सजित कर दिया। इस घटना की खबर रामानुज के शिष्यों को मिली। तव से उन्होंने अपना भोजन स्वयं ही पकाने का निश्चय किया।

एक अन्य घटना भी वडी रोचक है।

यज्ञमूर्ति नामक एक प्रकाण्ड पंडित रामानुज को धर्मविवाद में पराजित करने के उद्देश्य से श्रीरंगम् आये।

अठारह दिनों तक वाद चला। उन्नीसवें दिन रामानुज ने यमुनाचार्यजी के सिद्धान्तों पर आधारित एक तर्क उनके सामने रखा। उस पंडित के पास कोई उत्तर न था। वह लीन होकर रामानुज की शरण में आ गया। वाद में रामानुज ने उसको शिष्य बनाकर उस का नाम देवराज मुनि रखा।

दो शिष्य !

अब रामानुज का कीर्तिप्रकाश चारों ओर फैल गया। वे तीर्थ यात्रा करने की इच्छा से अपने शिष्योंसहित भ्रमण करते–करते अष्ट-सहस्रग्राम आए। वहां पर उनके दो शिष्य थे। एक था यज्ञेश जो धनी था और दूसरा था वरदार्य जो बहुत गरीब था। रामानुज अपने गरीब शिष्य वरदार्य के घर पहुंचे। उसकी

पत्नी ने सहास्य मुद्रा से स्वागत कर अतिथि सत्कार किया। रामानुज प्रसन्न हुए। यज्ञेश गुरुजी के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा। जब गुरु नहीं आए तो उसका अहंकार नष्ट हो गया। वह दौडता हुआ वरदराय के घर पहुंचा। गुरुजी के चरणों पर गिर उसने क्षमा मांगी। रामानुज ने बडे प्रेम से उसे गले लगाया और उपदेश दिया "देखो भक्त! सभी मनुष्य मात्र एक ही ईश्वर के अंश है। ऊंच-नीच, अमीर-गरीब ये भेद तो हमारे बनाये हुए हैं। सर्व चराचर को भेदरहित दृष्टि से देखो।"

अपनी यात्रा में उन्होंने तिरुपति में एक वर्ष तक भगवान श्रीनिवास की सेवा की और श्रीशैलपूर्णजी के समीप रहकर रामायण का अध्ययन किया।

महान भाष्यकार

उन्हें अब स्मरण हुआ कि अपने गुरु को दिए हुए वचनानुसार उन्हें वेदव्यास के ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य की रचना करनी थी।

"ब्रह्मसूत्र" पर भाष्य की रचना करने के लिए महर्षि वेदव्यास के शिष्य बोधायन के लिखे ग्रंथ की सहायता लेना आवश्यक था। परन्तु वे जानते थे कि बोधायन कृत भाष्य की केवल एक प्रति काश्मीर के विद्वानों के पास है। रामानुज कूरेश सहित पैदल ही काश्मीर पहुंचे।

राजदरबार में उनका भव्य स्वागत हुआ। उनकी प्रतिभा से दरबारी और विद्वान अत्यंत प्रभावित हुए।

रामानुज ने अपना काश्मीर आने का उद्देश्य बताया और विद्वानों से बोधायन के भाष्य ग्रंथ की उनसे याचना की। लेकिन वहां के विद्वान ऐसे दुर्लभ ग्रंथ को हाथ से जाने देने को तैयार न थे। रामानुजने संपूर्ण ग्रंथ की दूसरी हस्तलिखित प्रति तैयार करने की इच्छा दर्शायी। लेकिन विद्वानों ने इनकार कर दिया। अन्ततः रामानुज ने अत्यंत नम्रता से कहा, "मुझे एक वार उस महान ग्रंथ को पढने की अनुमति दीजिए।" विद्वानों को इस बात पर कोई आपत्ति

नहीं हुई। क्योंकि ऐसे गहन ग्रंथ को एक बार पढ लेने से क्या खाक समझेगा ? विद्वानों ने वह ग्रंथ उन्हें पढने के लिए दे दिया। कूरेश ने आदि से अन्त तक सुस्पष्ट स्वर में ग्रंथवाचन किया। और एकाग्र मन से पद्मासन की मुद्रा में बैठकर रामानुज ने ग्रंथश्रवण किया। उनकी स्मरणशक्ति अलौकिक थी। उन्होंने संपूर्ण ग्रंथ की पाण्डुलिपि तैयार की। और वे खुश होकर श्रीरंगम् वापिस आ गये।

एक समय लिखते-लिखते कूरेश रुक गये। वे गुरुजी की ओर देखने लगे। कूरेश की यह हरकत गुरुजी को अच्छी नहीं लगी और गुस्से में वे उठकर चल दिये। लेकिन उन्हें अपनी गलती समझ में आ गयी। वे वापिस आकर अपने स्थान पर बैठ गए। कूरेश, तुमने सचमुच ही मेरी गलती दिखाकर एक महान कार्य किया है। अन्यथा गुरुवाक्य प्रमाण मानकर तुम लिखते जाते तो इस रचना में यह दोष सदैव के लिए रह जाता।"

इस प्रकार 'श्रीभाष्य' की रचना हुई और रामानुज 'श्रीभाष्यकार' कहलाए।

रामानुज के छात्रों ने वैष्णव धर्म प्रसार के लिए श्रीगुरुजी को साथ लेकर विभिन्न तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की। दक्षिण के चोल और पांड्य साम्राज्य का भ्रमण कर वे उत्तर भारत की ओर गए। द्वारका, बद्री-केदार आदि स्थानों की यात्रा करते हुए वे काश्मीर तक पहुंचे। वही रामानुज को विद्या की देवता शारदा का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने रामानुज को हयग्रीव की मूर्ति भेंट की। वे काशी, प्रयाग, करते हुए पुरी पहुंचे। वहां पर रामानुज ने 'अंवरमठ' की स्थापना की। जगन्नाथ मन्दिर के प्रबन्ध का उन्होंने पुनर्गठन किया। संपूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण कर वे श्रीरंगम् वापस आये।

कर्नाटक में आगमन

श्रीरंगम् के राजा चोलवंशी थे। उस समय चोल सम्राट करिकाल शिव पूजक और शैवमत का अभिमानी था। उसने अपने राज्य में एक

फरमान जारी किया कि शिवपूजा ही सर्वश्रेष्ठ है। फिर किसी ने राजा से कह दिया, कि "महाराज, हम तो शिव मत के अभिमानी हैं ही। लेकिन रामानुज को बुलाकर अपने शैवमत की पुष्टि करायें।" फिर क्या था? राजा के दूत रामानुज को लाने पहुंच गये। रामानुज स्नान कर रहे थे। अपने गुरुजी पर आये संकट को कूरेश ताड गये। स्वयं को ही रामानुज वताकर वे राजदरवार पहुंच गए। इस घटना का पता रामानुज को दाशरथी से मिला। उन्होंने श्रीरंगम् छोडने का निश्चय किया और कावेरी नदी को पार करके वे कर्नाटक में आ गये।

परन्तु रामानुज के दोनों प्रिय शिष्य कूरेश और महापूर्ण राजा के क्रोध का शिकार हो गए। उनको पकडकर जंगल में ले जाया गया और उनकी आंखें फोड दी गयीं। महापूर्ण तो इन कष्टों को सहन न कर सके। वे मर गए। कूरेश अपनी दृष्टि खोकर एक छोटे से गांव में वस गए। कर्नाटक पहुंचने के पश्चात् रामानुज

शालिग्राम में रहने लगे। वहां के नरसिंह मंदिर के मुख्य पुजारी वदुहनांबी थे। वे रामानुज के शिष्य हो गए। धीरे–धीरे रामानुज का श्रीवैष्णव धर्म-प्रसार का कार्य वहां वढने लगा। उस स्थान पर जो तालाब है, वह आज भी 'श्रीपाद-तीर्थ' के नाम से विख्यात है और श्रीवैष्णवधर्मी लोगों का पवित्र क्षेत्र है। और वहां के मंदिर का प्रवन्ध आज भी वदुहनांबी के वंशज चला रहे हैं।

बिट्टी देव

अव रामानुज होयसल राज्य की राजधानी तोंडनूर में आ गए। विट्टी देव (विठ्ठल देवराय) वहां के राजा थे। उनकी पुत्री मनोरुग्ण थी। रामानुज को रोगमुक्ति की दैवी शक्ति प्राप्त थी। विट्टी देव ने यह सुनकर उन्हें लाने के लिए दूत भेजे। रामानुज पहले तो राजा के यहां नहीं गये पर जव उनके शिष्य तोंडनूरुनम्बी ने कहा कि यह राजा चोल राजा के समान नहीं है तो वे तैयार हो गये। रामानुज राजमहल में आए और

उन्होंने अपने अलौकिक स्पर्श से राजकन्या को रोगमुक्त किया। राजमहल में खुशी की लहर दौड गयी। विट्टी देव ने वैष्णव धर्म का स्वीकार किया। वह तत्पश्चात विष्णुवर्धन नाम से विख्यात हो गया। इस महान घटना के स्मारक स्वरूप विष्णुवर्धन ने अपने राज्य में पांच भव्य विष्णु मंदिरों का निर्माण किया। वे हैं बेलूर में चन्निग-नारायण, तोंडनूर में नंविनारायण, तलकाड में कीर्ति नारायण, गदग में वीर नारायण, और मेलकोटे में चलुवनारायण मन्दिर। कर्नाटक निर्माण शैली के ये मन्दिर शिल्पकला के बेजोड और अमिट नमूने हैं। उन्होंने वहां कुछ मन्दिरों का और तिरुमलसागर नामक तालाव का भी निर्माण किया। आज यह तालाव 'मोती तालाव' के नाम से जाना जाता है। फिर रामानुज मेलकोटे आए। मेलकोटे को ही तिरुनारायणपुर अथवा यादवगिरि कहते हैं। यह प्रदेश पहाडी और घने जंगलों से घिरा था। वहीं मिट्टी के एक टीले के नीचे भगवान तिरुनारायण की मूर्ति दबी पडी थी। रामानुज ने उसे निकलवाकर



भगवान तिरुनारायण की मूर्ति को मेलकोटे में
एक विशेष मंदिर में स्थापित किया ।

विशेष रूप से बनाये गए मन्दिर में स्थापित की। इसी मन्दिर की उत्सव मूर्ति के विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है।

कहते हैं कि इस मन्दिर में पहले यह उत्सवमूर्ति नहीं थी। वह वहां के सुलतान के महल में थी। सुलतान की बेटी को उस मूर्ति से बेहद लगाव था। उत्सव मूर्ति सुलतान की कोठी में होने का पता चलने पर रामानुज उसे लाने के लिए महल में गए। सुलतान से वे मिले और मूर्ति मन्दिर के लिए देने की प्रार्थना की। सुलतान ने उनसे कहा, "आपको मूर्ति लौटाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। आप उसे ले जा सकते हैं। परन्तु मुझे मेरी बेटी से पूछना होगा।"

कहते हैं कि रामानुज ने ऊंचे स्वर में कहा "हे मेरे ईश्वर, तुम आ जाओ।" और वह मूर्ति नाचती हुई रामानुज के पास आ गयी। रामानुज मूर्ति को लेकर मेलकोटे की ओर चल पडे। परन्तु सुलतान की बेटी मूर्ति के विरह

से व्याकुल हो कर उनके साथ चलने लगी। वह उस मूर्ति से बेहद प्यार करती थी। जब उसे विश्वास हो गया कि अब मूर्ति उसे वापिस नहीं मिलेगी, तो उसने वहीं अपने प्राण त्याग दिए।

रामानुज को मंदिरों के निर्माणकार्य में तथा सार्वजनिक हितों के अन्य सभी कार्यों में हरिजनों से बहुत सहायता मिली। रामानुज हरिजनों को 'तिरुकुलत्तार' (उच्चवर्णीय) कहते थे। उन्होंने मंदिर प्रवेश संबंधी हरिजनों पर लगाए गए निर्बंध तोड दिये। वर्ष भर में तीन ऐसे उत्सव उन्होंने शुरू किये जब हरिजन मंदिर में प्रवेश कर मुक्त देवदर्शन का आनन्द लेने लगे।

रामानुज कर्नाटक में करीब बीस साल तक रहे। मेलकोटे में उन्होंने यतिराज मठ की स्थापना और मंदिरों का निर्माण किया। श्रीवैष्णवमत का प्रचार और प्रसार का कार्य कर्नाटक में सर्वदूर हुआ। अब उन्हें श्रीरंगम् जाने की इच्छा हुई। अपने पुराने साथियों और शिष्यों

की याद आने लगी। विशेषतया कूरेश, धनुर्दास, गोविन्द को वे बहुत याद करते थे। वहां अभी बहुत कार्य करना था। आततायी चोलसम्राट करिकाल भी अब नहीं रहा था। नया चोलसम्राट दुराभिमानी नहीं था। वे मेलकोटे के अपने सहकर्मीयोंसे बिदा लेकर श्रीरंगम् वापिस आ गये।

रामानुज को अपने साथ पाकर सभी उत्साहित हो गये। फिर एक बार वैष्णवधर्मीयों में चेतना आ गयी। अपने प्रिय शिष्य कूरेश से वे मिले। कूरेश की अन्धावस्था देखकर वे दुखी हो गये। कुछ समय बाद कूरेश की मृत्यु हो गई।

अब अपना शेष कार्य पूर्ण करने में रामानुज लग गए। उस समय उनकी आयु एकसौ बीस साल की हो गयी थी। जिस कार्य के लिए देह-धारणा हुई थी वह भी अब पूर्ण हो चुका था। अब शरीर त्यागने का समय आ गया।

उन्होंने अपनी पूर्णाकृति मूर्ति बनवाई। वह श्रीपेरम्बुदूर में स्थापित की गयी। उन्होंने अपने

शिष्यों को पास बुलाया। अपना आखिरी उपदेश उन्हें दिया।

"मेरे शरीर त्यागने का समय निकट आ गया है। जिस कार्य को हमने आजतक किया वह तुम्हें आगे बढाना है। श्रीवैष्णवधर्म की ध्वजा अव तुम्हें सौंप कर मैं निर्वाण करता हूं। अपना अहं त्याग दो। भगवान के भक्त वनो। भक्तों से प्रेम करो। सर्व मानव उस ईश्वर की सन्तान है। मानवमात्र की सेवा ही ईश्वर की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस दुनिया में ऐसा कोई नहीं जिससे गलती नहीं होती। किसी का अपमान मत करो। मन और आचरण से शुद्ध रहो। यही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। मेरा आशीर्वाद आप सभी के साथ है।"

अंतिम समय आ गया। रामानुज लेट गए। गोविन्द ने अपने उस महान भाई तथा गुरु का सिर गोद में ले लिया। आंध्रपूर्ण ने उनके पावन चरणकमल अपनी गोद में रखे। इसी अवस्था में उनका निर्वाण हुआ। वह दिन था माघ सुदी १० शके १०५९ (सन् ११३७)।

रामानुज का संदेश उनके शिष्यों द्वारा देश के कोने–कोने में फैल गया। रामानुजने भक्ति-मार्ग पर विशेष रूप से कार्य किया। ईश्वर सत्य, शिव और सुंदर है। रामानुज ईश्वर को दया स्वरूप मानते थे। ईश्वर की आराधना सच्चे मन से करने पर उसकी कृपा होने में देर नहीं लगती। ईश्वर के भक्त की कोई जाति नहीं होती। वे सभी महान होते हैं। रामानुजाचार्य ने जातिधर्मभेदरहित होकर सर्व समभाव को ही सच्चा श्रीवैष्णवधर्म माना था।

आज भी हमें इसी श्रीवैष्णवधर्म के अनुसरण की आवश्यकता है।

* *



॥ श्रीः ॥

भारत-भारती

बाल–पुस्तकमाला

उपलब्ध पुस्तकें

हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं में

४४. स्वातंत्र्यवीर सावरकर

४५. पं. दीनदयाल उपाध्याय

४७. भगिनी निवेदिता

४९. विश्वामित्र

५०. लाला लाजपतराय

५१. महासती द्रौपदी

५२. संत गुलाबराव महाराज

५३. गुरुपुत्र फतेहसिंह, जोरावरसिंह

५५. बाहुबली

५६. भगवान महावीर

५७. डा. आम्बेडकर

५८. केळदि चेन्नम्मा

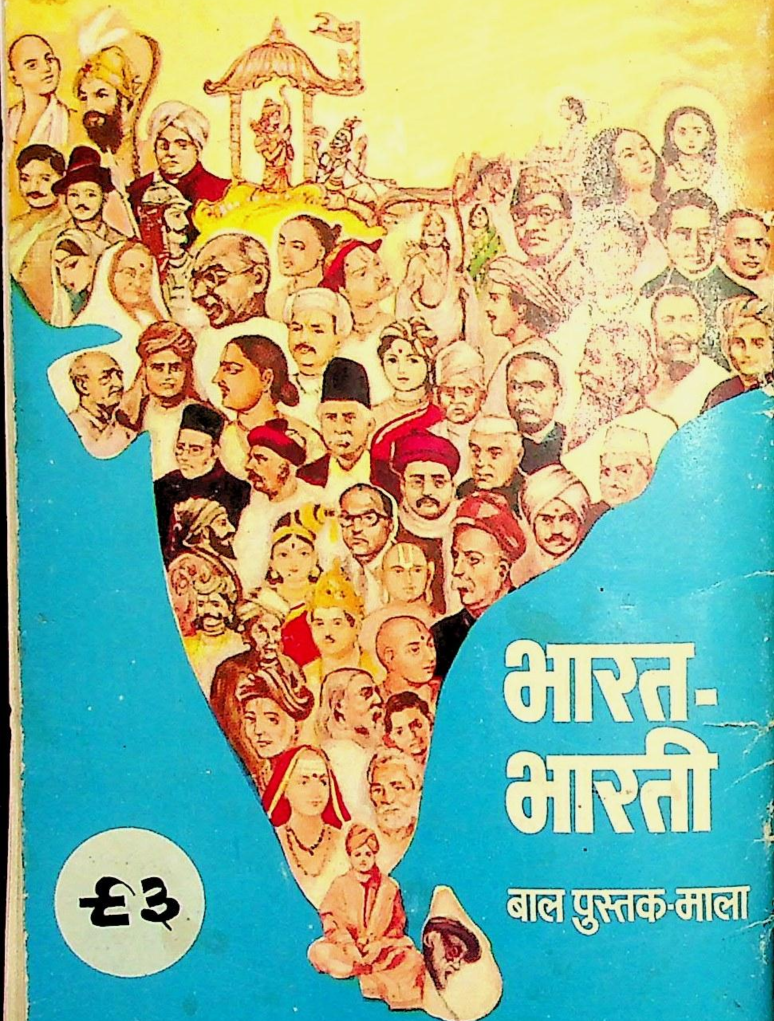
५९. समर्थ रामदास

६०. भक्त प्रह्लाद
६१. खारवेल
६२. जीजाबाई
६३. बीरबल साहनी
६४. लाचित बडफूकन
६५. भगवान वेदव्यास
६६. आंडाळ
६७. नन्दलाल बोस
६८. बाल गंगाधर तिलक
६९. कर्ण
७०. दधीचि
७१. खुदीराम बोस
७२. कालिदास
७३. मदनलाल धिंगरा
७४. भगतसिंह
७५. झांसी रानी लक्ष्मीबाई
७६. परशुराम
७७. कण्णगी
७८. नामदेव
७९. भीष्म
८०. ध्रुव

८१. शंकराचार्य
८२. चाणक्य
८३. अल्लूरी सीताराम राजू
८४. स्वामी विवेकानन्द
८५. दिलीप
८६. नारायण गुरु
८७. वीर अभिमन्यु
८८. छत्रसाल
८९. वासुदेव बलवंत फडके
९०. छत्रपति शिवाजी
९१. कार्तिकेय
९२. कनकदास
९३. रामानुजाचार्य
९४. शकुंतला
९५. तुकाराम

पुस्तक क्र. १ से ४३, ४६, ४८ तथा ५४ उपलब्ध नहीं
पुस्तक क्र. ४४ से ८३ तक रु. २–००
पुस्तक क्र. ८४ से रु. २–५०

⊙⊙



रुईकर पथ, नागपुर ४४०००२